शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 नवम्बर 2013

हिंदी दलित कविता में यथार्थ

विद्या राजेंद्र कलसाईत
शोध अध्येता, साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

शोध संक्षेप

दलित कविता ने परंपरागत संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक भाषा को नकार कर अपने लिए सहज सरल, यथार्थ की भाषा को अपनाया है क्योंकि दलित कविता दलित बौद्धिक सक्रियता का सर्वाधिक मुखर आयाम है। भारतीय समाज व्यवस्था ने दलितों पर जो अमानुषिक उत्पीड़न किया है उस यातना की निचली तह से उठकर ऊपर आने वाला दलित कवि अपने भीतर जिस आंच को अनुभव करता है वह भुक्तभोगी ही समझ सकता है। अतः दलित कविता दलितों की दिशा और दृष्टि को जीवंत बनाती है। जिससे दलित कविता की भाषा में रोजमर्रा की जिंदगी का यथार्थ दिखाई देता है।

दलित कविता और यथार्थ

कविता में भाषा का प्रश्न केवल अभिव्यक्ति नहीं बल्कि सामाजिक चेतना, मूल्यबोध, वैचारिक दृष्टि, संवेदना आदि से जुड़ा हुआ है। जिससे दलित कवि का अनुभव समाज अनुभव से जुड़कर रचना में प्रयोजनशील हो पाता है। वास्तव में यह केवल रचना कर्म ही नहीं एक प्रकार का कवि के संपूर्ण व्यक्तित्व का रूपांतरण है।

दलित को जन्म से ही सामाजिक एवं आर्थिक असमानता का सामना करना पड़ता है। शोषक वर्ग उनके स्वाभिमान को रौंदता है, कुचलता है जिससे आतकित दलित के मुख से यथार्थ मुखर होता है। प्रख्यात हिंदी दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविता में जिंदगी का यथार्थ व्यक्त करते हुए कहा है कि-

'सुअरों की गंध

और नालियों में बहती बदबू

जब घुसने लगेगी नासिक रन्ध्रों में

इनकार कर देंगे फेफडे

सांस लेने से।"1

कवि ने स्वयं अस्पृश्यता को जिया है। साथ ही उन सभी अपमानों को भी सहा है जिसे सुनकर हमारे रौंगटे खड़े हो जाते हैं। समाज में दलित परंपरागत वर्ण व्यवस्था की पीड़ा से सर्वाधिक पीड़ित है इसलिए दलित कवियों की कविता में यथार्थ का चित्रण हुआ है।

दलित कवि कंवल भारती स्वानुभूति की पीड़ा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि-

'मैं सदियों से पल रहा हूं

आतंक के साये में

झेल रहा हूं यातनाओं के दंश

गांव, कस्बों में, शहरों में।' 2

उपर्युक्त कविता में कवि कहते हैं कि सुबह से रात तक अपनी जिंदगी में मैं बहुत बार मर-मर कर जिया हूं। उसकी अनुभूति ही यथार्थ का परिचय है। कवि यथार्थ के प्रति संवेदनशील ही नहीं सजग भी है। कर्मशील भारती ने अपने जीवन की वास्तविकता को व्यक्त करते हुए कहा है कि-

'मेरा सिर चकरा जाता है

शरीर में खून की कमी रहती है

रोगों का निवास बन गया है

मेरा अस्थिपिंजर जिस्म।" 3

सवर्णों द्वारा दी गई यातना से दलितों का शरीर छिन्न-विछिन्न हो गया है। इसलिए कवि की कविता में व्यक्तिपरकता न होते हुए निरंतर जीवन मूल्यों के लिए लड़ाई है। अतः दलितों में चेतना जागृति के लिए कवि ने यथार्थ की भाषा का प्रयोग किया है। चाहे स्त्री हो या पुरुष दोनों की पीड़ा समान है। क्योंकि दोनों ही दलित होने से पीड़ित हैं। दलित कवयित्री सुशीला टाकभौरे ने दलित पीड़ा को स्वयं भोगा है। वे स्त्री के यथार्थ स्वरूप को अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहती हैं कि-

'जो दर्द तुममें है

वही मेरे जिस्म में है।" 4

सुशीला टाकभौरे ने अपनी आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में भी इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहा है कि- 'शिकंजे में कसे जीवन के दिनों में युवावस्था मिली ही नहीं, जैसे लगातार कैद में रहने से मन समय के पहले बूढ़ा हो गया हो।'5

अतः दलित होने के साथ-साथ स्त्री होने की पीड़ा ने भयावह रुप धारण किया है। आज भी समाज में नारी की स्थिति दयनीय है। इस तरह दलित कवि हो या कवयित्री उन्होंने परंपरागत सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के लिए यथार्थ की भाषा का प्रयोग किया है। शस्त्र से वार नहीं किया बल्कि शब्द रुपी शस्त्र का प्रयोग कर क्रांति का ऐलान किया है। जब कविता मानवीय परिप्रेक्ष्य से जुड़ती है तो वह दुखी, शोषित एवं पीड़ित निरीहजनों की अभिव्यक्ति बन जाती है। और इस तरह कविता अपने कविता होने के भाव को सार्थक करती है। व्यक्ति अनुभव से सामाजिक अनुभव में परिवर्तित होने वाली कविता सामाजिक बोध की कविता बन जाती है। सामाजिक बोध की कविता यथार्थ को अभिव्यक्त करती है।

सन्दर्भ

1. बस्स! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.-102
2. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती?, कंवल भारती, पृ. 63
3. कलम को दर्द कहने दो, कर्मशील भारती, पृ. 18
4. तुमने उसे कब पहचाना, सुशीला टाकभौरे, पृ.-36
5. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृ.-5